ISSN 2348-3857

भारतीय लोकतंत्र में निर्वाचन व्यवस्था : चुनौतियाँ एवं प्रयास

Research Reinforcement
ISSN 2348-3857

नवल किशोर

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

भारत एक समाजवादी, पंथनिरपेक्ष तथा लोकतांत्रिक गणराज्य है, जिसके संविधान में शासन के संसदीय स्वरूप को अपनाते हुए सांविधानिक लोकतंत्र की स्थापना की गई है। जिसे जीवित रखने हेतु नियतकालिक निर्वाचन रूपी प्राणतत्व की निरन्तर आवश्यकता पडती है। अर्थात् यदि प्रजातंत्र को वृक्ष की संज्ञा दी जाए तो निर्वाचन को इस वृक्ष रूपी लोकतंत्र को सींचने वाले जल के समान माना जा सकता है। इसकी झलक भारत में निर्वाचन की सर्वप्रथम शुरूआत 1892 के 'इंडियन कौंसिल एक्ट' में देखी जा सकती है, उसके बाद से भारत में निर्वाचन व्यवस्था का विस्तार तथा उसके साथ-साथ परिवर्तन व परिशोधन होता आ रहा है। नियतकालिक व निष्पक्ष निर्वाचन की बदौलत ही भारत ने अन्य पडौसी देशों की तुलना में अपना लोकतंत्र जीवित रखा है तथा निरन्तर परिपक्वता की ओर बढ रहा है, इसीलिए कहते है कि निर्वाचन और लोकतंत्र में अन्योन्याश्रित व अनिवार्य संबंध है। संविधान में स्थान देकर तथा निर्धारित ढाँचे व उपयुक्त अधिकारों के साथ भारतीय निर्वाचन आयोग इसको आगे बढा रहा है तथा समयानुसार आवश्यक सुधार के सार्थक प्रयास भी निरन्तर कर रहा है। निर्वाचन की निष्पक्षता तथा शुचिता के प्रति निष्ठा, जहाँ एक ओर लोकतांत्रिक प्रणाली के सुचारू व सार्थक संचालन की अनिवार्य संवैधानिक पूर्वापेक्षा है, तथा वहीं निर्वाचन का सम्यक निष्पादन का कार्य अत्यन्त जटिल, चुनौतीपूर्ण तथा श्रमसाध्य है। आधुनिक लोकतंत्र मुख्यतया प्रतिनिधि लोकतंत्र हैं, जिसके अन्तर्गत जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों को शासन के लिए उत्तरदायी बनाया जाता है।

संकेताक्षर : *राजनीतिक अपराधीकरण, जातिवाद, स्वीप कार्यक्रम, नोटा*

लोकतंत्र की गतिशीलता निर्वाचन पर निर्भर करती है। निर्वाचन रूसों द्वारा वर्णित 'सामान्य इच्छा' का परिमापक है। निर्वाचन हीगल के 'द्वन्द्व' के शमन के बिन्दु के रूप मे राजनीतिक 'संवाद' की कार्य-परिणत वास्तविकता है। रूसो द्वारा स्थापित सामान्य इच्छा सभी मतदाताओं की स्वतंत्र व्यक्तिगत इच्छाओं का सम्मिलन है। निर्वाचन द्वारा स्थापित सरकार, निर्वाचकों के एक संघ के रूप में राज्य की गतिविधियों को संचालित करने के लिए विधिक रूप से अधिकृत होती है।[1]

एक गणतंत्र में विशेषकर भारत जैसे संघीय गणतंत्र में एक स्वतंत्र निर्वाचन-प्रशासन, एक स्वतंत्र सरकार की स्थापना की पूर्व-शर्त है। संविधान द्वारा स्थापित निर्वाचकीय निकाय प्रत्येक आसन्न चुनाव के लिए अग्रिम व्यवस्थाएँ करता है। यह जनगणना के द्वारा प्राप्त जनसंख्या के आंकडों का भौगोलिक समायोजन करता है और साथ ही प्रत्येक राज्य के सन्दर्भ में आनुपातिक रूप से उनका निर्धारण तथा पुनर्निर्धारण का कार्य भी करता है। अन्त में इन सभी का गणतंत्र की गत्यात्मकता के निमित्त अभिलिखित तथ्यों के रूप में निष्पादन करता है।[2]

निर्वाचन का प्रारम्भ भारतीय राजनीति में सर्वप्रथम 1892 के 'इण्डियन कौसिल एक्ट' में देखा जा सकता है। इस अधिनियम के द्वारा प्रान्तीय परिषद् तथा केन्द्रीय विधायी परिषद् की कुछ अशासकीय सीटों के लिए सीमित तथा अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचन का प्रावधान पहली बार किया गया।[3] तथा निर्वाचन के इस प्रारंभिक प्रावधान को 'मिण्टो-मार्ले कानून-1909 में स्पष्ट और व्यापक रूप से अंगीकार किया गया। इसलिए 1909 के इस अधिनियम को निर्वाचन के इतिहास में एक मील का पत्थर माना जाता है।[4]

1909 के कानून के अनुसार अब प्रत्येक विधायी परिषद् में तीन प्रकार के सदस्य होने लगे - (अ) निर्वाचित, (ब) शासकीय तथा (स) अशासकीय। इस समय निर्वाचन को साम्प्रदायिक आधार दिया गया। 1909 के इस कानून द्वारा लागू निर्वाचन की इस व्यवस्था को गंभीर आलोचना का विषय बनाया गया, क्योंकि उसमें अनेक दोषपूर्ण व्यवस्थाएं तथा दुर्बलताएं विद्यमान थीं। 1919 के भारत शासन अधिनियम द्वारा निर्वाचन का आधार और अधिक व्यापक तथा विस्तृत किया गया। इसके अन्तर्गत केन्द्रीय और प्रान्तीय परिषदों में निर्वाचित सदस्यों की संख्या में वृद्धि की गई, मताधिकार का विस्तार किया गया तथा निर्वाचन को भी प्रत्यक्ष बनाया गया। तथापि साम्प्रदायिक तथा वर्गो के आधार पर बहु-आलोचित विशिष्ट निर्वाचन की व्यवस्था इस कानून द्वारा भी निरन्तर जारी रखी गई। 1909 में यह सांप्रदायिक निर्वाचन केवल मुसलमानों को दिया गया था, जबकि 1919 के कानून द्वारा इसे सिक्खों, भारतीय इसाईयों, यूरोपीय तथा एंग्लो- इण्डियन लोगों के लिए भी बढ़ा दिया गया।[5] 1935 के अधिनियम से पहले साइमन कमीशन ने 1928 में वयस्क मताधिकार का प्रतिशत बढ़ाने तथा महिलाओं को भी मताधिकार देने की वकालत की थी।[6] 1931 में ब्रिटिश सरकार ने लार्ड लोथियान की अध्यक्षता में एक 'मताधिकार समिति' गठित की थी, जिसने 'वयस्क मताधिकार' के प्रश्न पर गहराई से विचार करके इसके पक्ष में अनेक तर्क दिए। 1935 के कानून द्वारा भी साम्प्रदायिक निर्वाचन को यथावत् बनाए रखा गया तथा मताधिकार अभी भी प्रमुख रूप से सम्पत्ति, शिक्षा और आय की योग्यताओं पर आधृत था।[7]

निर्वाचन और संविधान सभा

संविधान सभा ने निर्वाचनों को निष्पक्ष, स्वतंत्र तथा शंकारहित बनाने के उद्देश्य से यह निश्चय किया कि भारत में एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग हो जो व्यवस्थापिका और कार्यपालिका के प्रभाव से मुक्त रहकर इन निर्वाचनों का प्रबंधन तथा संचालन करे। इसी अनुरूप भारतीय संविधान के भाग XV में 'निर्वाचन' शीर्षक के अन्तर्गत एक पृथक अध्याय में भारत के निर्वाचन से सम्बंधित समस्त व्यवस्थाओं का उल्लेख किया गया है।[8]

चुनाव आयोग

गठन

भारतीय संविधान के भाग XV के अनुच्छेद 324-329 तक चुनाव आयोग का प्रावधान है। अनुच्छेद 324 के अनुसार ''निर्वाचन आयोग मुख्य निर्वाचन आयुक्त उतने अन्य निर्वाचन आयुक्तों से, यदि कोई हों, जितने राष्ट्रपति समय-समय पर नियत करें, मिलाकर बनेगा।[9]

भारत में सम्पूर्ण देश हेतु एकीकृत निर्वाचन व्यवस्था का प्रावधान किया गया है, संसद द्वारा बनाई गई विधि के अनुसार निर्वाचन आयोग के सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। निर्वाचन आयोग में यदि एक से ज्यादा सदस्य हों तो मुख्य निर्वाचन आयुक्त, अध्यक्ष के रूप में कार्य करता है। उसी प्रकार से जिस प्रकार एकीकृत निर्वाचन आयोग से परामर्श करके निर्वाचन आयोग की सहायता के लिए प्रादेशिक आयुक्तों की नियुक्ति कर सकता है। निर्वाचन आयोग की सहायता के लिए मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा अन्य निर्वाचन आयुक्त, प्रादेशिक आयुक्त, मुख्य निर्वाचन अधिकारी, रिटर्निंग ऑफिसर, पीठासीन अधिकारी, मतदान अधिकारी तथा आवश्यक सहायक कर्मचारियों का उल्लेख है।

निर्वाचन आयोग के सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष या 65 वर्ष की आयु, जो भी पहले हो, प्राप्त होने तक अपने पद पर बने रहने का अधिकार है। ऐसी स्थिति मुख्य तथा अन्य निर्वाचन आयुक्तों (दोनों) के सन्दर्भ में समान है। दूसरी तरफ, निर्वाचन आयोग को निर्भीक तथा निष्पक्ष बनाए रखने की दृष्टि से मुख्य निर्वाचन आयुक्त को पद से हटाने की प्रक्रिया कठिन है, जो महाभियोग के समान है।

कार्य

जहां तक चुनाव आयोग के कार्यो की बात करें, इसका प्रमुख दायित्व लोकसभा, राज्य विधानसभा, राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के लिए होने वाले चुनावों का निरीक्षण, निर्देशन तथा नियंत्रण करना है। साथ ही परिसीमन आयोग अधिनियम-1952 के अनुसार निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन किया जाता है। परिसीमन आदेशों के विरूद्ध किसी भी न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती है। यह व्यवस्था चुनाव आयोग को सुदृढ़ आधार प्रदान करती है।

निर्वाचन आयोग प्रत्येक लोकसभा, विधानसभा तथा मध्यावधि चुनाव के पूर्व मतदाता सूची का पुन: अवलोकन तथा सुधार करवाता है तथा सूची को अद्यतन करवाता है। साथ ही यह राजनीतिक दलों को मान्यता तथा चुनाव चिन्ह आवंटित करता है, चुनावों की तिथियों का निर्धारण करता है। क्रमश: नामांकन पत्र भरे जाने, उनकी जांच करने, नामों की वापसी तथा मतदान आदि चुनावों के विभिन्न चरण हैं। सांसदों की अयोग्यता के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को परामर्श भी निर्वाचन आयोग देता है, जो इसका

ISSN 2348-3857

अर्द्ध-न्यायिक कार्य है। यदि चुनावों में गड़बड़ी हुई तो चुनाव को रद्द घोषित करना तथा पुन: मतदान तथा मतगणना की व्यवस्था भी चुनाव आयोग ही करता है।[10]

भारतीय निर्वाचन व्यवस्था के समक्ष चुनौतियाँ

भारतीय निर्वाचन व्यवस्था में कई चिन्ताजनक तथ्य, निर्वाचन व्यवस्था की असंगतियाँ तथा दोष है। विशेषकर चौथे आम चुनावों 1967 तथा उसके बाद भारतीय निर्वाचन प्रणाली के निर्वाचनों में धनबल, बाहुबल, मतदान केन्द्रों पर कब्जा करने, अपराधियों का चुनाव लड़कर विधायिका में पहुंचना जैसी कई विसंगतियाँ प्रकट हुई। भारतीय लोकतंत्र में फर्स्ट-पास्ट-द-पोस्ट सिस्टम (चुनाव प्रणाली) में ऐसा दल सत्ता प्राप्त करता है, जिसे देश के बहुमत का समर्थन प्राप्त नहीं होता। भारत के किसी भी संसदीय चुनाव में कोई भी शासक दल या गठबंधन कुल मतों के 50 प्रतिशत से अधिक मत प्राप्त नहीं कर पाया है। दूसरी ओर, धन की भूमिका चुनावों में विवादास्पद है। नवीनतम संशोधनानुसार लोकसभा के उम्मीदवारों के लिए चुनाव खर्च की सीमा 70 लाख तथा केन्द्रशासित क्षेत्रों तथा विधानसभा उम्मीदवारों के लिए 16 से 40 लाख रूपये निर्धारित है तथापि वास्तविक चुनाव खर्च इससे बहुत ज्यादा है।[11]

भारतीय चुनाव आयोग के समक्ष एक बड़ी समस्या राजनीति का अपराधीकरण है, राजनीति के अपराधीकरण की दृष्प्रवृत्ति हाल के वर्षो में कुछ और फली-फूली है।[12] साथ ही चुनावों में सरकारी पदों का दुरूपयोग करना आम बात है। निर्वाचन आयोग द्वारा समय-समय पर इस सम्बन्ध में निर्देश जारी कने के बावजूद भी इस पर पूर्ण नियंत्रण नहीं पाया जा सका है। अन्तत: चुनाव आयोग के कर्तव्यों की श्रृंखला तो लम्बी है, पर उनके अधिकार सीमित हैं। मतदाता सूचियां तैयार करना, दूर-दराज क्षेत्रों तक चुनावी, धनबल व भुजबल आदि का सामना करना आदि बड़ी चुनौतियां हैं, जिनका सामना सीमित संसाधन व अधिकारों से करना कठिन है।

भारतीय निर्वाचन व्यवस्था के समक्ष एक बड़ी चुनौती यह है कि इसमें असंख्य छोटे-छोटे दलों को मान्यता मिल जाती है जो चुनावों के प्रति प्राय: उदासीन रहते हैं। ऐसी परिस्थिति में वे दल तथा इसी प्रकार के निर्दलीय निर्वाचन प्रशासन के सामने भारी सिरदर्द बन जाते हैं। इन उदासीन प्रत्याशियों की विशाल संख्या स्वयं मतदाताओं को भी परेशानी में डाल देती है। इसके अलावा भारतीय निर्वाचकीय व्यवस्था में कुछ विकृतियां राजनीतिक व्यवस्था तथा पर्यावरण से जनित मानी जाती है। निर्वाचन को प्रभावित करने में जातिवाद, सांप्रदायिकता, धार्मिक भावनाएं आदि भी सहायक भूमिका का निर्वाह करते रहे हैं, इसलिए सभी प्रमुख राजनीतिक दल, सरकार तथा स्वयं निर्वाचन आयोग बार-बार यह घोषणा करते हैं कि चुनावों में साम्प्रदायिकता, धार्मिक असहिष्णुता, जातिवाद और संकीर्ण क्षेत्रीयता को प्रोत्साहन न दिया जाए। निर्वाचन अधिकारियों पर राजनीतिक तथा अन्य प्रकार के दबाव भी कई बार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से देखे जाते हैं। साथ ही शासक दल या मंत्रियों द्वारा ''दलीय लाभों'' के लिए प्रशासनिक तंत्र का दुरूपयोग भी सामने आता है। भारत में अनुपस्थित मतदाताओं का प्रतिशत भी बहुत ज्यादा है जो निर्वाचन में रुचि नहीं लेते तथा निर्वाचन केन्द्रों तक पहुंचने का कष्ट नहीं करते।[13]

सुधार के प्रयास

उपरोक्तानुसार स्पष्ट है कि भारतीय निर्वाचन व्यवस्था के समक्ष अनेक चुनौतियां हैं। इनसे निपटने हेतु तारकुण्डे समिति, दिनेश गोस्वामी समिति, विधि आयोग, संविधान समीक्षा आयोग तथा उच्चतम न्यायालय आदि ने समय-समय पर बेहतर सुझाव प्रस्तुत किए हैं। इनमें से प्रमुख है- जो प्रत्याशी चुनाव में भ्रष्टाचार करते हैं, उन्हें एक लम्बे समय के लिए निरर्हित किया जाना चाहिए तथा जो उम्मीदवार अपने चुनाव खर्च का ब्यौरा नियमानुसार नहीं देते उन्हें भी कम-से-कम पांच वर्ष के लिए चुनाव लड़ने की आज्ञा नहीं होनी चाहिए।[14]

14वीं लोकसभा का चुनाव 2004 देश में पहला ऐसा चुनाव रहा, जिसमें उम्मीदवारों को बाकायदा शपथ-पत्र दाखिल कर सम्पत्ति, शैक्षिक योग्यता तथा अपने विरूद्ध चल रहे आपराधिक मामले बताना अनिवार्य था। वर्ष 2009 में लोकसभा चुनाव हेतु जमानत राशि सामान्य कोटे के प्रत्याशियों हेतु 10,000 से बढ़ाकर 25,000 रूपये तथा अनुसूचित जाति व जनजाति हेतु 5,000 से बढ़ाकर 12,000 रूपये कर दी गई तथा वहीं राज्य विधानसभा हेतु यही राशि क्रमश: 5,000 से बढ़ाकर 10,000 तथा 2,500 से बढ़ाकर 5,000 रूपये कर दी गई। ऐसा कम गंभीर प्रत्याशियों की संख्या बढ़ने से रोकने के लिए किया गया।15 16वीं लोकसभा के चुनाव-2014 में उच्चतम न्यायालय के निर्देशानुसार निर्वाचन आयोग को ई.वी.एम. के उम्मीदवारों की सूची के आखिर में नोटा (None of the above) 'उक्त में से कोई नहीं' का विकल्प दिया गया। इसी संदर्भ में एक प्रयास कि 2003 में राजनैतिक दलों को किसी व्यक्ति या सरकारी कम्पनी छोड़ शेष किसी कम्पनी से कोई राशि स्वीकार करने की स्वतंत्रता थी तथा आयकर में राहत का दावा करने के लिए उन्हें 20,000 रूपये

से अधिक हर चन्दे की जानकारी चुनाव आयोग को देनी होगी। साथ ही चन्दे के रूप में दी गई रकम पर कम्पनी को भी आयकर में छूट मिलेगी। इसके अतिरिक्त 2010 में विदेशों में रहने वाले भारतीयों को वोट का अधिकार देने की व्यवस्था की गई। अर्थात् भारत का हर नागरिक जिसका नाम मतदाता सूची में शामिल नहीं हो, जिसने किसी दूसरे देश की नागरिकता ग्रहण नहीं की हो और जो नौकरी, शिक्षा अथवा अन्य किसी कारण से विदेश में रह रहा हो अपना नाम मतदाता सूची में जुड़वा सकता है।

भारत में चुनाव प्रक्रिया को स्वच्छ बनाने तथा राजनीति के अपराधीकरण पर नियंत्रण पाने के उद्देश्य से निर्वाचन आयोग के सभी राज्यों तथा केन्द्रशासित प्रदेशों के चुनाव अधिकारियों को अगस्त, 2005 में यह निर्देश जारी किया है कि जिन लोगों के विरूद्ध गैर-जमानती वारन्ट पिछले छः माह से लम्बित है, उनके नाम मतदाता सूची से हटा दिये जाएं। मतदाता सूची में नाम न होने से ऐसे लोग चुनाव लड़ने से स्वतः ही अयोग्य हो जाएंगे। प्रशासनिक तंत्र के दुरूपयोग पर भी जागरूक होते भारत तथा भारतीय जनता की प्रतिक्रिया से कुछ कमी आई है। निर्दलीय तथा उदासीन प्रत्याशियों की अनावश्यक संख्या पर भी निरन्तर प्रयास किया गया है, जिसका परिणाम है कि उम्मीदवारी हेतु जमानत राशि में बढोतरी की गई है तथा किसी उम्मीदवार का दो से ज्यादा स्थानों से प्रत्याशी बनने पर प्रतिबंध लगाया गया है। साथ ही निर्वाचन आयोग पर अधिक कार्यभार एवं दबाव को देखते हुए स्वयं निर्वाचन आयोग को भी बहु-सदस्यीय बनाया गया है ताकि निर्वाचन प्रबन्धन एवं संचालन आसानी से संभव हो सके।[16]

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि भारतीय लोकतंत्र की निर्वाचकीय व्यवस्था काफी सुदृढ़ व सुव्यवस्थित है, जो भारत जैसे विशाल देश को निरन्तर पुष्ट कर रही है, हांलाकि इसमें समय के साथ कुछ खामियां नजर आती हैं, तथापि समयानुरूप वांछित सुधार व परिवर्द्धन किया जाता रहा है। प्रतिवर्ष 25 जनवरी को राष्ट्रीय मतदाता दिवस के रूप में मनाया जाता है, इससे सम्पूर्ण राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षित तथा अशिक्षित सभी प्रकार के मतदाताओं को अपने मताधिकार के प्रति जागरूक बनाने का प्रयास किया जाता है। इसके अतिरिक्त वर्तमान में निर्वाचन आयोग द्वारा SVEEP (Systematic voters education and election participation) प्रोग्राम चलाया जा रहा है, इसके द्वारा मुख्य रूप से नए जुडे मतदाताओं, विशेषतः युवा मतदाताओं को मतदान-साक्षरता के बारे में जागरूक किया जा रहा है व साथ ही मतदान सहभागिता बढ़ाने हेतु निर्वाचकों को प्रोत्साहित किया जाता है, इसमें निर्वाचन आयोग विभिन्न आवश्यक प्रयास करता है।

यही कारण है कि निर्वाचन का भारत के राजनीतिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। निर्वाचन के माध्यम से राष्ट्रीय सहमति प्राप्त करने की दिशा में भी प्रयास किया जाता है। यद्यपि लोकतंत्रीय निर्वाचन की 'साधारण बहुमत' के सिद्धान्त पर आधृत निर्वाचन व्यवस्था द्वारा, पूर्ण राष्ट्रीय सहमति तो नहीं पाई जा सकती, तथापि राष्ट्रीय सहमति और राष्ट्रीय एकता की दिशा में समय-समय पर अभिव्यक्ति कर पाते हैं, इसी अनुरूप निर्वाचन असाधारण योगदान कर पाने में सफल होते हैं, जो अन्य किसी माध्यम द्वारा कदाचित संभव नहीं हो पाता।

संदर्भ सूची

1. शर्मा, अशोक, भारत में लोकतंत्र और निर्वाचन, अनुसंधान व विशद अध्ययन संस्थान, जयपुर, 1984, पृ. 1-2
2. उपर्युक्त पृ. 4
3. रिपोर्ट ऑफ दी इण्डियन स्टेट्यूटरी कमीशन वॉल्यूम-1, पृ. 116
4. माहेश्वरी, श्रीराम: दी जनरल इलैक्शन इन इण्डिया, चैतन्य, इलाहाबाद, 1963
5. उपर्युक्त, पृ. 21
6. रिपोर्ट ऑफ दी इण्डियन स्टेट्यूटरी कमीशन वॉल्यूम-2, पृ. 92
7. www.eci.nic.in
8. पायली, एम.बी.: इण्डियाज कॉन्स्टीट्यूशन, एशिया बम्बई, 1974, पृ. 378
9. भारतीय संविधान का अनुच्छेद, पृ. 324
10. चतुर्वेदी, गीता, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, पंचशील प्रकाशन जयपुर, 2015, पृ. 369-371
11. मंगलानी, रूपा, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2015, पृ. 549-551
12. सिंह, निशांत व सारस्वत, स्वप्निल, लोकतंत्र और चुनाव सुधार, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2003, पृ. 51
13. आढ़ा, आर.एस., भारत में निर्वाचन व्यवस्था: चुनौतियां एवं संभावनाएं, ए.बी.डी. पब्लिशर्स, जयपुर, 2008, पृ. 195-203
14. सिवाच, जे.आर., भारत की राजनीतिक व्यवस्था, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2003 पृ. 363
15. www.eci.nic.in
16. मंगलानी, रूपा, पूर्वोक्त, पृ. 553-556